Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 2, March-April 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i02.1290

"समकालीन काव्य में जनतंत्र की अभिव्यक्ति"

डॉ. श्यामता साहू

सहायक प्राध्यापक
डॉ. सी.वी. रमन विष्वविद्यालय कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांष–
समकालीन काव्य में जनतंत्र का प्रभावी चित्रण हुआ है। जिन समकालीन कवियों ने युगानुरूप अपने काव्य में लोकतंत्र का अंकन किया है उनमें अज्ञेय,मुक्तिबोध, शमषेर, नागार्जुन, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, केदारनाथ सिंह, नरेष मेहता, दुष्यंतकुमार, धूमिल, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, लीलाधर जगूड़ी, कुमार विकल, बलदेव बंषी, विष्वनाथ त्रिपाठी, गोरख पाण्डेय, चन्द्रकांत देवताले, उदयप्रकाष, अरूणकमल, मंगलेष डबराल, रामकुमार कृषक, राजेष जोषी, वेणु गोपाल, नचिकेता, रामदेव आचार्य, विनोद गोदरे, ज्ञानेन्द्रपति, सोमदत्त, सुरेन्द्र तिवारी, राजकुमार कुंभज, ललित शुक्ल ,नरेन्द्र मोहन, मालती शर्मा, शान्ति सुमन, सावित्री डागा, दिनेष नंदिनी, हरि ठाकुर, असद जैदी, कैलाष वाजपेयी, के. अतिरिक्त अरूण आदित्य, मदन कष्यप, एकान्त श्रीवास्तव, गीत चतुर्वेदी, निषिकान्त, श्रीकान्त जोषी, दिनकर सोनवलकर, कुन्तलकुमार जैन, मदन डागा, मनोज सोनकर के नाम विषेष उल्लेखनीय हैं।

साहित्य जीपन की सार्थक प्रस्तुति है। भारत की शक्ति उसकी मानसिक शक्ति है। गांवों का सामूहिक जीवन स्वायत्त शासन और लोकतंत्र की अवधारणायें, अहिंसा, सत्य, अध्यात्म आदि भारत की वे थातियां है। जिन्हें संभालने ,संवारने और व्यवहार्य बनाये रखने की जिम्मेदारी रचनाकर्म पर है। कविन्द्र रविन्द्र को महात्मा गांधी ने एक पत्र लिखकर अपनी भावनाओं से अवगत कराया था कवि हमारे वैयक्तिक चक्षुओं के सामने सुंदर चिड़ियों के सुंदर चित्र खींचता है, जो उषा के आगमन पर महिमा के गीत गाती हुई शून्य में अपने रंगीन, पंखों से उड़ान भरती है। मुझे ऐसे पक्षियों को देखने में वेदना ही हुई, जो निर्बलता के कारण पंख फड़फड़ाने की चाहत ही नहीं कर पाते।

प्रस्तावना –

प्रत्येक युग में समाज में कवियों के अनुकूल–प्रतिकूल धारण में परिवर्तन पाया जाता है। काव्य समाज में सत्यम्, षिवम्, सुन्दरम् की प्रतिष्ठापना चाहता है। यदि इसके विपरीत हुआ तो कवि अपने काव्य में समाज में परिवर्तन चाहता है। हर कवि के मन में काव्य सृजन के लिए एक विषिष्ट धारण होती है। उसी के अनुरूप वह सृजन करता है। उद्देष्य के अनुरूप ही धारण में सिद्धि पायी जाती है। आज साम्प्रदायिक राजनीति ने अपनी पंहुच से साहित्य, अध्यात्म, ज्ञान–विज्ञान, धर्म, समाज आदि किसी भी क्षेत्र को अछूता नहीं रहने दिया है। आज की राजनीति भी धार्मिक या जातीय सम्प्रदाओं, विश्वासों में बंटकर, मानवता के मूल लक्ष्य से भटक गई है। धार्मिक साम्प्रदायिकता, अधिकायवाद, लोकतंत्र, समाजवाद–साम्यवाद आदि में साम्प्रदायिक राजनीति का पूर्ण समावेष है। अलगाववाद इतना तीव्र कि भारत के ही लोग भारत के किसी भाग में लहराते तिरंगे निकाल फेंकते हैं, संविधान की पोथियां जला दी जाती है। हम जो प्राप्त किये हैं उसे सहेजने की योग्यता भी नहीं रखते। प्रसिद्ध संविधानविद् नानी पालखीवाला का ये व्यंग्यात्मक उद्गार यही संकेत करते हैं– जिन्होंने स्वंय को तो संविधान समर्पित किया पर उसे रखने की योग्यता अर्जित नहीं की–

जिन्हें पूर्वजों से प्रखर देदीप्यमान परम्परा तो मिली
पर उसे अक्षुण्ण रखने की बुद्धिमता नहीं मिली
जो बड़ी शक्ति और धैर्य के साथ, कष्ट का शाप तो
भोग रहे हैं पर (षापग्रस्त हनुमान की भांति)
उन्हें अपनी शक्ति का ज्ञान व भान नहीं है।[1]

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 2, March-April 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i02.1290

समकालीन काव्य –

समकालीन काव्य में जनतंत्र का प्रभावी चित्रण हुआ है। जिन समकालीन कवियों ने युगानुरूप अपने काव्य में लोकतंत्र का अंकन किया है उनमें अज्ञेय,मुक्तिबोध, शमषेर, नागार्जुन, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, केदारनाथ सिंह, नरेष मेहता, दुष्यंतकुमार, धूमिल, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, लीलाधर जगूड़ी, कुमार विकल, बलदेव बंषी, विष्वनाथ्र त्रिपाठी, गोरख पाण्डेय, चन्द्रकांत देवताले, उदयप्रकाष, अरूणकमल, मंगलेष डबराल, रामकुमार कृषक, राजेष जोषी, वेणु गोपाल, नचिकेता, रामदेव आचार्य, विनोद गोदरे, ज्ञानेन्द्रपति, सोमदत्त, सुरेन्द्र तिवारी, राजकुमार कुंभज, ललित शुक्ल ,नरेन्द्र मोहन, मालती शर्मा, शान्ति सुमन, सावित्री डागा, दिनेष नंदिनी, हरि ठाकुर, असद जैदी, कैलाष वाजपेयी, के. अतिरिक्त अरूण आदित्य, मदन कष्यप, एकान्त श्रीवास्तव, गीत चतुर्वेदी, निषिकान्त, श्रीकान्त जोषी, दिनकर सोनवलकर, कुन्तलकुमार जैन, मदन डागा, मनोज सोनकर के नाम विषेष उल्लेखनीय हैं।

साहित्य जीपन की सार्थक प्रस्तुति है। भारत की शक्ति उसकी मानसिक शक्ति है। गांवों का सामूहिक जीवन स्वायत्त शासन और लोकतंत्र की अवधारणायें, अहिंसा, सत्य, अध्यात्म आदि भारत की वे थातियां है। जिन्हें संभालने ,संवारने और व्यवहार्य बनाये रखने की जिम्मेदारी रचनाकर्म पर है। कविन्द्र रविन्द्र को महात्मा गांधी ने एक पत्र लिखकर अपनी भावनाओं से अवगत कराया था ''कवि हमारे वैयक्तिक चक्षुओं के सामने सुंदर चिड़ियों के सुंदर चित्र खींचता है, जो उषा के आगमन पर महिमा के गीत गाती हुई षून्य में अपने रंगीन, पंखों से उड़ान भरती है। मुझे ऐसे पक्षियों को देखने में वेदना ही हुई, जो निर्बलता के कारण पंख फड़फड़ाने की चाहत ही नहीं कर पाते।''[2]

स्वाधीनता के बाद के बीस वर्षों के स्वषासनकाल की असफलताएं, राजनेताओं की चरित्रहीनता, चीन से पराजय और शासन का भ्रष्ट रूप यहां के जन साधरण के जीवन में कई तरह की समस्याएं उत्पन्न करते गये। यह भी सत्य है कि आजादी के बाद हमारा देष कुछ क्षेत्रों में सफल रहा। कृषि प्रधान देष में उद्योगों की नींव पड़ी। किन्तु इससे हुई प्रगति का लाभ जनसाधारण के लिए तो उंट के मुंह में जीरा साबित हुआ। आज के युग में शासन हमारे जीवन में प्रायः सभी अंगों को प्रभावित करता है। शासन से उत्पन्न स्थिति में जीते हुए अनुभव करने लगते हैं कि हमारी हर सुविधा–असुविधा का दायित्व हमारी सरकार पर है– राजनीति पर है– राजनेताओं पर है। जनतंत्र प्रणाली वाले शासन में हमारे सुख–दुख की जिम्मेदारी संसद पर होती है। समकालीन कवियों ने संसद और जनतंत्र से अनेक प्रष्नों के जवाब चाहे हैं। धूमिल की रोटी और संसद राजनीतिक बोध का मुख का मुखर प्रतिनिधित्व करने वाली कविता है– ''एक आदमी/रोटी बेलता है/एक आदमी रोटी खाता है/ एक तीसरा आदमी भी है/ जो न रोटी बेलता है/ न रोटी खाता है/ वह सिर्फ, रोटी से खेलता है/मैं पूछता हंम–/यह तीसरा आदमी कौन है? मेरे देष की संसद मौन है।''[3]

समकालीन कवियों ने राजनीतिक ठोस तात्कालिकता को अनिवार्य और अटूट संयोग से कविता के साथ जोड़ा है। इन सभी कवियों ने राजनीति के लिए कविता का नहीं कविता के लिए राजनीति का इस्तेमाल किया है। ये सभी कवि विरोध की राजनीति को अपने काव्य के लिए आवश्यक समझते हैं। इन कविताओं में भाषा का रूप ठोस और दो टूक है, उसका मुहावरा हाट बाजार, आकाषवाणी, समाचार पत्र, संसद सभा में प्रचलित भाषा का मुहावरा है, जैसा कि कैलाष बाजपेयी ने लिखा है– ''मैं देखता हूं/ कुछ लकड़बघ्घे संसद से निकलकर/पंहुच गए हैं, घर रखैल के /और उधर कोई सुकरात रोज अंधा हो जाता है सीखंजे गिनते हुए जेल के।''[4]

जनतंत्र कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जिसमें सब कुछ पवित्र है, सुंदर, सहज प्राप्त है। जनता जर्नादन कहकर प्रषंसा करना, प्रचार करना, लोकतंत्र की महानता के गीत गाना और नेता की उपलब्धियों का प्रचार करना आम रिवाज है। लोकतंत्र में आलोचना और प्रतिवाद की महत्ता होती है, उसके प्रति उपेक्षा का भाव नहीं रखना चाहिए। ''लोकतंत्र में आलोचना और बहिष्कार, अलगाव और लगाव, यथार्थ और अयथार्थ, गुस्सा और अनालोचनात्मक आदि के लिए पर्याप्त जगह है। लोकतंत्र में स्त्री के गर्भाषय की तरह लोच है। आप चाहें क्रांतिकारी हों या प्रतिक्रांतिकारी हों सभी के लिए लोकतंत्र में स्त्री जगह हैं। लोकतंत्र की शक्ति ही यही है कि इसमें सबके लिए जगह है। लोकतंत्र कभी पलायन और अलोचनात्मकता से समृद्ध नहीं होता बल्कि आलोचनात्मक नजरिए से अपने को समृद्ध करता है।''[5]

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 2, March-April 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i02.1290

बाबा नागार्जुन ने लोकतंत्र के मतपत्र को बेसन की उपमा दी है। उन्होंने लोकतंत्र को अनुभव के आधार पर इस प्रकार व्याख्यायित किया है– ''मतपत्रों की लीला देखो/भाषण के बेसन घुलते हैं। प्यारे इसका पापड़ चक्खो/प्यारे इसका चीला देखो/चक्खो, चक्खो पापड़ चक्खो/गाली–गुफता झापड़ चक्खो/मत पत्रों की लीला चक्खो/भाषण के बेसन का प्यारे, चीला चक्खो।''[6]

खंडित स्वतंत्रता, अहिंसा और पंचषील के लचर सिद्धांत, गांधी की हत्या, गुलाम भारत के संविधान पर आधारित गणतंत्र का संविधान, ये तत्कालीन संदर्भ समकालीन कविता में व्याप्त मोह भंग की पृष्ठभूमि में है। आजादी के बाद पंचवर्षीय योजनाओं की विफलता नागार्जुन की कविता में इस प्रकार व्यक्त हुआ है–''आजादी की कलियां फूंटी पांच साल में होंगे फूल।

पंच साल में फल निकलेंगे, रहे पंत जी झूला झूल।।
पंच साल कम खाओ भैयया, गम खाओ दस पन्द्रह साल।
अपने ही हाथों से झोंको यो, अपनी आंखों में धूल''।।[7]

समकालीन काव्य में जनतंत्र –

समकालीन कवियों ने लोकतंत्र को सामाजिक यथार्थ की कसौटी पर बार–बार परखा है और जीवन में यथार्थ में व्यक्त को तरजीह दी है। अभी हम जिस लोकतंत्र में रह रहे हैं उसमें निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा व्यक्ति का शोषण चरम पर है। जगदीष्वर चतुर्वेदी के अनुसार ''हमारे यहां लोकतंत्र तो है लेकिन लोकतांत्रिक मनुष्य नहीं है। डोमेक्रेसी है लेकिन डेमोक्रेट नहीं है। लोकतांत्रिक मनुष्य के बिना लोकतंत्र अर्थहीन है। लोकतंत्र तब ही सार्थक है जब लोकतांत्रिक मनुष्य भी हों। भारत में लोकतंत्र के महान जयघोष में लोकतांत्रिक मनुष्य का लोप हुआ है। लोकतांत्रिक मनुष्य के बिना लोकतंत्र बेजान है।''[8]

सताधारी वर्ग में जब यजमान, पुरोहित, राजा और कवि अपने स्वार्थी की सुरक्षा–साधना में जुट जाते हैं तब क्रांति,श्भ्रांति–भ्रांति का छद्मवर्गीय स्वार्थों को जड़ों में आक्टोपसी संवाहन–सा आबद्ध कर्म बन जाता है। जनता निरीह हो जाती है। सत्ता–शासन की मुद्रा, हजार–हजार बाहों वाली जादूगरनी, में तबदील हो जाती है। संसद–सत्ता में आसीन राष्ट्रीय नेतृत्व अपने ही दल को श्रेष्ठ बतलाता है, प्रसार माध्यमों का दुरूपयोग करता है। पर उसकी मूल–इच्छा और मूल साधना सत्ता की गद्दी हथियाना है। 'मंत्र' कविता में बाबा नागार्जुन ने इस स्थिति का जीवंत चित्रण किया है– '' ओं दलों में एक दल अपना दल ओं/ओं अंगीकरण, शुद्धीकरण, राष्ट्रीकरण/तुष्टीकरण, पुष्टीकरण/ एतराज, आक्षेप, अनुषासन/गद्दी पर आजन्म वज्रासन।''[9]

लोकतंत्र के कारण साधरण जनता से नेतृत्व उभरा है यह अच्छी बात है किन्तु नियत भी नेक होने चाहिए। समकालीन कवियों ने भी लिखा है कि लोकतंत्र कोई पवित्र गंगा नहीं है जिसमें नहाने के बाद सारे सामाजिक राजनीतिक पाप धुल जाते हैं। पूंजीवादी हितों की तरफदारी करने वाले गांधी जी, के चेले आजादी के बाद जिस राजनीतिक संस्कृति का विकास करते हैं, उस पर समकालीन कवियों के व्यंग्यों का तीखा प्रहार कम नहीं हुआ। सुषासन या रामराज्य पर केदारनाथ अग्रवाल का ये तीखा व्यंग्य मनुष्य के मन और मस्तिष्क को उद्वेलित करता है– '' आग लगे इस राम–राज्य में/ढोलक मढ़ती है अमीर की/चमड़ी बजती है गरीब की/खून बहा है राम–राज में।। [10]

आज सत्ता की सीढ़ी चढ़ने वाले अनेक जनप्रतिनिधि–वादे तो बहुत करते हैं किन्तु जैसे ही वे सत्तासीन होते हैं जन गण की आकांक्षाओं से दूर हो जाते हैं। उद्घाटन, भाषण और साजों की मस्ती में मदमस्त हो जाते हैं। कल तक जो टायर की टूटी चप्पल घसीटता था और वही आज नाना तिकड़मों के बल से करोड़पति बन बैठा है, उसी नेता के चमत्कार की धाक जनता स्वीकारती है। यह चारित्रिक परिवर्तन सहज में नहीं हुआ है इसके पीछे कई शक्तियों के विकट षड़यंत्र है। उनका षिकार भोला–भाला अषिक्षित तो होता ही है। सोचने वालों की तकाकथित बुद्धिजीवियों की स्थिति भी कोई बहुत अच्छी नहीं है जैसा कि धूमिल ने लिखा है– '' सिर कटे मुर्गे की तरह

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 2, March-April 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i02.1290

फड़कते हुए जनतंत्र में /सुबह–/सिर्फ चमकते हुए रंगों की चालबाजी है/और यह जानकर भी तुम चुप रहोगे/ या शायद, वापसी के लिए पहल करने वाले/आदमी की तलाष में/ एक बार फिर/तुम लौट जाना चाहोगे मुर्दा इतिहास में/मगर तभी–/ यादों पर पर्दा डालती हुई सबेरे की/फिरंगी हवा बहने लगेगी अखबारों की धूप और वनस्पतियों के हरे मुहावरे/तुम्हें तसल्ली देंगे/और जलते हुए जनतंत्र में सूर्योदय में/षरीक होने के लिए/तुम चुपचाप दिनचर्या का/पिछला दरवाजा खोलकर/बाहर आ जाओगे।''[11]

समकालीन कविता में आज का परिवेष, उसकी भयावहता, आतंक,अन्याय,श्षोषण, अजनबियत उदासी तथा आज की राजनीति और उसकी त्रासदी अपने नंगे रूप में मौजूद है। 'हस्तिानापुर का रिवाज' कविता में श्रीकान्त वर्मा ने विचार–शक्ति के माध्यम से कवित्व शक्ति का ही महिमा गान किया है ''हस्तिनापुर के निवासियों–होषियार/हस्तिनापुर में/तुम्हारा एक शत्रु पल रहा है, विचार–/और याद रखो/आजकल महामारी की तरह फैल जाता है/विचार''[12] इस देश के शासकों द्वारा चलाया जाने वाला जनतंत्र एकदम बेमानी है। नेताओं का घोर नैतिक पतन हुआ है। आजादी के बाद देश विकास के पथ पर चला किन्तु उस विकास का लाभ समाजवाद का झंडा उठकर चलने वाली इस देष की संसद, साधारण मनुष्य तक नहीं पहुंच पाया। ''हमारा इतिहास साक्षी है– राजमुकटों से बादषाहों के ताजों ने सत्ता छीनी। ताजों से फिरंगियों की हैटों ने सत्ता झपट ली। हैटों से सफेद टोपियों को सत्ता बक्ष दी गयी ।इन परिवर्तनों का प्रभाव शासकों के मस्तिष्क पर न के बराबर हुआ। स्वाधीनता के बाद भी सफेद टोपी से रंगीन टोपियों सत्ता ले उड़ी परन्तु इस युग में भी शासकों की नीयत और चरित्र में कोई लक्षणीय परिवर्तन नहीं आया''[13]

सत्ता की देखरेख में संकुचित वर्ग–स्वार्थ जैसे–तैसे लीला विस्तार करते हैं, वैसे–वैसे पूंजीवादी जनतंत्र छल और नाटक में तब्दील हो जाता है। नव सामंतों के उत्थान के साथ गांवों में टकराव तेज हुए, जनता का दमन तेज हुआ, साथ–साथ सामंती विचारधारा के घटकों का पूंजीवादी हितो में उपयोग भी तेज हुआ। कवि शेरजंग गर्ग ने तिकड़मी नेताओं के चरित्र का प्रभावी अंकन किया है– ''हम तिकड़मों के बल पर शासन संभालते हैं/टोपी बदल बदलकर पगड़ी उछालते हैं।। आवाज में हमारी परवाज है गजब की/ मखमल के शब्द जाल में सपनों को ढालते हैं। /कोई कमाल हमसे रहता नहीं अछूता/ हम छेद से सुई के हाथी निकालते हैं।/ हम पर यकीन करना जीते हुए है मरना/हम मुर्दाघाट के पथ के जिंदा मुगालते हैं।।''[14]

एक अरब से अधिक जनसंख्या वाले भारत देष में लोकतंत्र एक मिसाल है भारतीय संविधान में यहां निवास करने वाले व सभी नागरिकों को दैनिक जीवन में सफल दिनचर्या को जीने के लिए आवश्यक मूलभूत सुख–सुविधाओं और अधिकार सर्वत्र दिये गये हैं जिससे कि भारतवर्ष एक महान राष्ट्र बन सके। भयानक और निर्मम शोषण जोर शोर से जारी है। पुलिस भ्रष्ट है, अखबार मौन दर्षक है, और जनता की सरकार जनता के शोषण में लीन है। अधिकारी वर्ग खुष है कठपुतली नाच हो रहा है और राजदरबार में झूठ का नाटक जोरों पर है। रोटी और कपड़ा मांगने वालों को सजा दी जाती

आजादी से पहले रामराज्य का जो सपना जनता की प्रेरक शक्ति थी, आजादी के बाद वही जीवन का सबसे बड़ा व्यंग्य बन गया। सर्वेष्वर दयाल सक्सेना ने भारतीय जीवन की इस गंभीर असंगति को व्यक्त करने के लिए जो राजनैतिक कविताएं लिखीं, उनमें तत्कालीन सत्ताधीषों के फरेब के खिलाफ जनता का पराजित विष्वास अपने पूरे सात्विक क्रोध के साथ प्रकट होता है।

कवि रामकुमार कृषक ने अपनी गजल संग्रह 'नीम की पत्तियां' में सत्ता और व्यवस्था की बड़ी गहरी जांच पड़ताल करते हुए, उनकी विकृतियों, विसंगतियों और भ्रष्टताओं को उजागर करते हुए, संघर्ष चेतना पर बल दिया है।

कवियों ने वर्तमान शासन के समग्र परिवेष को गत कई दषकों में देखा है, और उसकी वास्तविकता को सही धरातल पर समझने का प्रयास किया है पर इस अनुभव में उसे सदैव भारतीय जनतंत्र में अर्न्तविरोधों की पुष्टि हुई

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 2, March-April 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i02.1290

है। इसलिए प्रजातांत्रिक व्यवस्थाएं राजनेताओं की नारेबाजी एवं चारित्रिक पतन की चर्चा इस काल के कवियों ने अनेक बार की है तथा राजनैतिक संत्रास को विभिन्न तरह से अभिव्यक्त किया है।

कवि उदय प्रकाष ने अपनी कविता 'महापुरूष' में सत्ता से चिपकने वाले नेताओं की बड़ी तस्वीर खींची है। नेता सजे संवरे, चमचों से घिरे रहते हैं। वे हानि भी पहुंचा सकते हैं और लाभ भी। पीठ पीछे उन्हें लोग गालियां भी देते हैं, पर सामने हाथ जोड़े रहते हैं। वे हीत्रर हालात में महत्वपूर्ण हैं– जीते तो भी हारे तो भी–''प्रजातंत्र एक मंत्र है/जिसे फूंकते हैं महापुरूष हारते हैं, तो जीतते हैं/ जीतते हैं तो जीततें हैं महापुरूष।

सुनकर हमें गर्व तो होता है कि हम विशाल गणतंत्र वाले देष में रहते हैं, किन्तु यह भी कटु सत्य है कि यहां के विद्यान मंडलों एवं संसद के एक चौथाई से अधिक जनप्रतिनिधियों पर चोरी, हत्या, गबन, बलात्कार, अपहरण इत्यादि के गंभीर आरोप लगे हैं और उन पर मुकदमा चल रहा है। जनतांत्रिक परम्पराओं और मूल्यों में पूंजीवाद को अब कितनी आस्था रह गई है। पर्याप्त ढिठाई के साथ भारत के राष्ट्राध्यक्ष के विरूद्ध राज्याध्यक्ष का तीक्षण अभियान इस सच्चाई को दुखद रूप में उभार देता है।

इस लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक दल,दलों के दलदल से निकल कर देष और दुनियां की बातें बहुत कम करते हैं। देष में कुछ भी अप्रिय प्रसंग निर्मित हो तो सत्ता पक्ष पड़ोसी देषों की साजिष बताकर अपनी नाकामी ढांकने का कार्य करता है।

ज्नतंत्र में जन के कल्याण की बातें प्रमुख रूप से निर्धारित किये गये हैं। इस तंत्र में बर्बरता का कोई स्थान नहीं है। इसमें तो जनता के लिए जनता के द्वारा जनता के शासन का प्रावधान है, किन्तु ये संवैधानिक और सैद्धांतिक ज्यादा है, व्यवहार में ठीक इसके विपरीत हो रहा है। जैसा कि आलोकधन्वा ने अपनी कविता 'जनता का आदमी' में लिखा है– मैं अभी मांस पर खुदे हुए अक्षरों को पढ़ रहा हूं– जहरीली गैसों और खूंखार गुप्तचरों से लैस/इस व्यवस्था का एक अदना–सा आदमी/मेरे घर में किसी भी समय जबर्दस्ती घुस आता है। और बिजली की कोड़ों से/मेरी मां की जांघ/मेरी बहन की पीठ/और मेरी बेटी की छातियों को उधेड़ देता है। मेरी खुली आंखों के सामने/मेरे वोट से लेकर मेरी प्रजनन शक्ति तक को नष्ट कर देता है/ मेरी कमर में रस्से बांधकर/मुझे घसीटता हुआ चल देता है/जबकि पूरा गांव इस नृषंस दृश्य को/तमाषबीन की तरह देखता रह जाता है।

नेताओं की सर्वग्रासी प्रवृत्ति ने जल, जंगल, जमीन को हथियाने का षड़यंत्र करके प्रषासकों के साथ ऐसा गोरख धंधा शुरू किया है कि 'स्कीम' के नाम पर ग्रामीण–षहरी व वनस्पतियों से उनका अतीत छीना जा रहा है। आज की विडम्बना है कि व्यक्ति बौने और कुर्सियां बड़ी हो रही है। व्यक्तित्व से नहीं बल्कि पद से महिमामंडित होने वाले जुगाड़ छाप लोगों की समाज व राजनीति में बाढ़–सी आ गई है।

ऐसी परिस्थिति में सजग कवि विपक्ष की भूमिका में होता है। जनतांत्रिक विचार धारा की आवष्यकता जितनी क्रांतिकारी के लिए है, उससे अधिक साधारण लोगों के लिए है। कवि विचारधाराहीन रहकर लिख नहीं सकता,क्योंकि वह अपनी दृष्टि में जीवन के कुछ स्वप्न और आदर्ष निर्मित करता है, सपनों और आदर्षों की यही व्यवस्था विचारधारा है। वह अपने सपने और आदर्षों को जीवन के प्रवहमान यथार्थ की संगति में तलाषता है, इसी में उनका सृजनात्मक संघर्ष निहित है।

उपसंहार–

यह विडम्बना है कि सर्वाधिक ईमानदार शासक के दौर में सबसे ज्यादा भ्रष्टाचार होता है। ऐसी स्थिति में जन सामान्य में उबाल आना स्वाभाविक है। कवि गण ऐसे प्रसंगों को लालित्य के साथ प्रस्तुत करते हैं। यह कविता ही है जिसने नेत्रहीन राजा को लक्ष्यवेधन के लिए उन्मुख किया था। इस संदर्भ में जगदीश्वर चतुर्वेदी जी का अभिमत है साइबर युग में कविता और साहित्य को लेकर अनेक किस्म की आषंकाएं व्यक्त की जा रही है। कुछ लोग यह

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 2, March-April 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i02.1290

भी सोच रहे हैं लोकतंत्र में कविता या साहित्य को कैद करके रखा जा सकता है? यह सोचते रहे हैं कि साहित्य हाषिए पर पंहुच गया है। लेकिन ऐसा हो नहीं पाया है। इसके विपरीत साहित्य और कविता का विस्तार हुआ है।

इतिहास साक्षी है कि वाणी के स्रष्टा कवियों ने समय–समय पर अपनी उद्‌बोधक एवं ओजस्वीवाणी द्वारा निष्प्राण राष्ट्र में नवजीवन का संचार किया, पराजय को विजय में बदला और असंभव को संभव कर दिखाया । रामकुमार कृषक के अनुसार किसी भी दुनियादार मनुष्य की तरह कवि या कोई रचनाकार इसी सभ्यता का अंग है। फिर भी कविता उसे छोड़ नहीं गई। वह अब भी उसके साथ है। युगानुकूल रंग–रूप बदलकर भी दिल उसने अपना नही बदला। बल्कि आज यह मनुष्य के बारे में सार्थक सोचती भी है। पहले की कविता सोचती कम थी, संवेदित ज्यादा होती थी। अब उसने संवेदना और सोच में एक बेहतर संतुलन बना लिया है। असंख्य अवसरों पर कवियों ने आततायियों से लोहा लिया और सर्वसाधारण को स्वाधीनता और सम्मान की रक्षा के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रेरणा दी। दंभी राजसत्ता को चुनौती देता हुआ कवि निरीह की मूक वेदना को क्रांति का स्वरूप देने में सहयोग करता है।

संदर्भ–ग्रंथ

1. पलखीवाला नानी– हम –भारत के लोग, सुरूचि प्रकाषन, केशवकुंज, नई दिल्ली, प्र.सं 1985, पृ.
2. सिंघई अषोक (प्रधानसंपा.)–पाण्डुलिपि, प्रमोद वर्मा संस्कृति संस्थान, रायपुर,अक्टू–दिस. 2010 पृ.9
3. धूमिल–रोटी और संसद, युगबोध प्रकाषन, वाराणसी,प्रथम संस्करण 1977, पृ 204
4. जैन डॉ. कान्तिकुमार– नयी कविता, मध्यप्रदेष हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, प्र.सं. 1972, पृ 204
5. सिंघई अषोक (प्रधान संपा.)–पाण्डुलिपि, जनवरी–मार्च 2011, पृष्ठ 354
6. विष्वरंजन (संपादक)–फिर फिर नागार्जुन, षिल्पायन, दिल्ली संस्करण 2011, पृष्ठ 319
7. शर्मा डॉ. कुमुद– नयी कवता में राष्ट्रीय चेतना, कृतिकार प्रकाषन इलाहाबाद, सं. 1988, पृष्ठ 320
8. विष्वरंजन (संपादक)–फिर नागार्जुन, पृष्ठ 320
9. सिंह नामवर (संपा)–नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल पैपरबैक्स, 5वीं आवृत्ति 2001, पृ. 111
10. शर्मा डॉ. रामविलास– प्रगतिषील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, विमल प्रकाषन, इलाहाबाद, संस्करण 1966 पृ.8
11. अष्टेकर डा.ग.तु– कटघरे का कवि धूमिल, पंचषील प्रकाषन, जयपुर संस्करण1984, पृ.89
12. तिवारी विष्वनाथ प्रसाद (संपा)– श्रीकान्त वर्मा– प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल पैपरबैक्स, तीसरी आवृत्ति 2005, पृ 111
13. अष्टेकर डा.ग.तु– कटघरे का कवि धूमिल, पृ.57
14. गर्ग शेर जंग–क्या हो गया कबीरों को, मेघा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003, पृ 32